आलोचना का परिप्रेक्ष्य

सम्पादक
रोहिताश्व

विद्या प्रकाशन
'सी' 449 गुजैनी, कानपुर-22

'आलोचना का परिप्रेक्ष्य' नामक प्रस्तुत पुस्तक यू०जी०सी० एकेडेमिक स्टाफ कालेज, गोवा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आर्थिक सहयोग से हिन्दी पुनश्चर्या पाठ्यक्रम - 2005 हेतु प्रकाशित

ISBN : 81-88554-10-3

मूल्य : तीन सौ पचास रुपये मात्र

☛ पुस्तक	:	**आलोचना का परिप्रेक्ष्य**
☛ संपादक	:	रोहिताश्व
☛ प्रकाशक	:	**विद्या प्रकाशन** सी-449, गुजैनी, कानपुर - 22 ☎ : (0512) - 2285003 Mo. : 9415133173
☛ संस्करण	:	प्रथम, 2005 ई०
☛ मूल्य	:	Rs. 350.00
☛ शब्द-सज्जा	:	च्वाइस कम्प्यूटर ग्राफिक्स बर्रा, कानपुर
☛ मुद्रक	:	अजित आफसेट रामबाग, कानपुर

ALOCHANA KA PARIPREKSHYA

Edited By : Rohitashwa

16

मुक्तिबोध कृत 'अंधेरे में' कविता : कथ्य एवं शिल्प

✍ रोहिताश्व

मुक्तिबोध की 'आशंका के द्वीप : अँधेरे में' नामक लम्वी कविता जव उत्तर और दक्षिण के सेतुस्थल हैदराबाद की पत्रिका 'कल्पना' के नवम्बर 1964 के अंक में प्रकाशित हुई तब इसे तत्कालीन दौर के विभिन्न आलोचकों के द्वारा इतिहास देश-काल राजनीति, साहित्य सर्जना और सामाजिक सरोकारों के सन्दर्भ में ऐतिहासिक महत्व की रचना के रूप में स्वीकारा गया था ।

'अंधेरे में' कविता का अपना देश-काल सन्दर्भ है और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी । स्वातंत्र्योत्तर भारत में एक ओर नवनिर्माण, नये मूल्य, नयी सर्जना, नयी आकांक्षा के सामाजिक सरोकार अपना महत्व रखते थे तो दूसरी ओर देश-विदेश की विकासशील राजनैतिक सांस्कृतिक शक्तियों के बीच भारतीय अस्मिता और निज विकास की संघर्षशील समाजवादी आस्था भी कम महत्वपूर्ण नहीं थी । पर 1947 से 1962 के दौर में, सत्ता धारी कांग्रेस-शासन में राजनीति व प्रशासन के स्तर पर भाई-भतीजावाद, लालफीताशाही, भ्रष्टाचार और जनता के दमन की नीति अपनायी गयी थी तब पंचवर्षीय योजनाओं की असफलता और राष्ट्रीय नेतृत्व के खोखलेपन के कारण प्रतिक्रिया स्वरूप लेखकों, पत्रकारों, छात्रों-अध्यापकों और बुद्धिजीवियों में विक्षोभ की लहर दौड़ पड़ी । अतः तत्कालीन देश-काल, इतिहास, समाज व राजनीति के संक्रमणशील दौर में इस महत्वपूर्ण और कालजयी रचना अंधेरे में की सर्जना प्रतिरोधात्मक स्तर पर हुई है । जो स्वातंत्र्योत्तर देश-काल इतिहास और सामाजिक सोच के विभिन्न अक्षांशों को रेखांकित करती है कि राष्ट्रीय नेतृत्व में जन-संरक्षण की जगह जन-विरोधी नीति अपनायी गयी है - अतः इस देशव्यापी चेतना के स्तर पर आशंकाओं के द्वीप अंधेरे (देश) में कहीं आग लग गयी कहीं गोली चल गयी !

'अंधेरे में कविता' के विशाल कैनवास में आशंका और निराशा के स्वर के समानान्तर आस्था और संघर्ष के स्वर भी हैं कि कब हमें रक्तालोक स्नातपुरुष (संघर्ष, त्याग की राह पर जीवन बिताने वाले) कालजयी और सामाजिक सरोकार वाले लोग मिलेंगे, जिन्हें हम तिलक, टॉलस्टाय और गाँधी की परम्परा वाला प्रज्वलित बुद्धि वाला सामाजिक संघर्ष और सरोकार वाला प्रतिनिधि मान सकेंगे । यह कविता अपनी लम्वी

संरचना में विभिन्न ऐतिहासिक राजनैतिक, सामाजिक, ब्यौरों, वर्णनों, घटनाओं, तथ्यों और सन्दर्भों को समेटते हुए पाठकों व आलोचकों से एक जटिल सौन्दर्य बोधी व समाज शास्त्रीय अभिशंसा की प्रत्याशा रचती है ।

कहना न होगा कि 'आशंका के द्वीप-अँधेरे में' नामक काव्य संरचना अपने जटिल फैण्टेसी शिल्प में, जो कल्पना और यथार्थ का मिला-जुला पैटर्न है, अपने सामाजिक सरोकारों में, काल-अंकित, काल विवेचित, काल-संदर्भित संकेतों को उजागर करती हुई रचनाकारों के विभिन्न दलों एवं प्रतिनिधियों से सामाजिक यथार्थ और प्रतिबद्धता पर सवालिया प्रश्न करती है । कारण जहाँ मुक्तिबोध देश-काल, इतिहास-संस्कृति लोकधर्मी चेतना से आम जनता से जुड़े थे वहीं अज्ञेय जैसे रचनाकार देश-काल, इतिहास-यथार्थ से विमुख होकर सामाजिक सन्दर्भों में केवल अभिजात्य वर्ग का प्रतिनिधित्व रच रहे थे ।

सामान्य पाठक भी जानते हैं कि अज्ञेय को जहाँ ''आत्मानुभूति और मौन के सौन्दर्यशास्त्र का रचनाकार माना जाता है, वहाँ मुक्तिबोध को आत्मचेतस कवि, आत्माभिव्यक्ति वाला सर्जक और नये सौन्दर्यशास्त्र का अन्वेषक रचनाकार माना गया है । कहना न होगा कि मुक्तिबोध सामाजिक सरोकारों के प्रगतिशील चेतना से परिपूर्ण प्रतिबद्ध कवि हैं ।

वास्तव में मुक्तिबोध को ऐतिहासिक चेतना और यथार्थ का विसंगति और वास्तविक घटनाओं का, जटिल संवेदना और मानवीय चेतना के व्यक्तित्वांतरण (declass) का सशक्त कवि माना गया है । 'अँधेरे में' नामक लम्बी कविता उनकी बहुचर्चित कविता है । जिसके बारे में अनेक सुधी आलोचकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अलग-अलग अभिमत प्रकट किए हैं । कहीं-कहीं पर इन आलोचकों की दृष्टि परस्पर मिलती है तो कहीं विलोम रूप से टकराती भी है ।

शमशेर बहादुर सिंह ने मुक्तिबोध के काव्य को 'चेतना का दहकता इस्पाती दस्तावेज' माना है तो रामविलास शर्मा उन्हें अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषण की भावनाओं से ग्रस्त कवि मानते हैं । नामवर सिंह उनकी लम्बी कविताओं रचनाओं को केन्द्र में रखकर कविता के नये प्रतिमान निर्धारित करते हैं तो विद्यानिवास मिश्र अपनी भाववादी आस्था से उनकी काव्य संरचना 'अँधेरे में' नर-नारायण के नेत्रों की पीड़ा का दर्शन तलाशते हैं । प्रभाकर माचवे इसे 'पिकासो की गुएर्निका इन वर्स' मानते हैं तो केदारनाथ सिंह उन्हें कालबद्ध कवि' की संज्ञा देते हैं । विश्वनाथ त्रिपाठी इसे संघर्ष पुरुष की स्वप्नकथा मानते हैं तो रमेश कुन्तल मेघ कवि मुक्तिबोध को रिम्बो और मायकोवस्की की परम्परा का कवि अभिज्ञापित करते हैं ।

प्रसाद की 'कामायनी' के पश्चात् महाकाव्यात्मक स्तर पर जो रचनाएँ हमारे सामने आयी हैं उनमें पंत का 'लोकायतन' और दिनकर की 'उर्वशी' मुख्य हैं । वे

हमारे जनसंघर्ष, युगबोध और अनुभूतिपरक जग की कितनी सटीक सामाजिक सरोकार वाली गाथाएँ हैं या हमारी रचना दृष्टि, विवेकदृष्टि, सांस्कृतिक मिथकीय चेतना और विश्व दृष्टि को जाग्रत करने में कितनी सहायक हैं, इसका निर्णय तो सुधी पाठक स्वयं ही तय कर सकते हैं । निसंदेह लम्बी कविताओं की संरचना में निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' राजमकल चौधरी कृत 'मुक्ति प्रसंग', अज्ञेय की 'असाध्य वीणा', धर्मवीर भारती की 'अंधा युग' एवं 'कनुप्रिया', सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली', मुक्तिबोध की 'अँधेरे में', धूमिल की 'पटकथा' आदि कविताओं का विशिष्ट महत्व है । जिनके विभिन्न भावलोक, रचनादृष्टि और शिल्प सृजन सम्बन्धी वैशिष्ट्य को हमारे समकालीन काव्य की उपलब्धि माना जा सकता है ।

लम्बी कविता सम्बन्धी रचना और कथ्य-शिल्प सन्दर्भ में कतिपय विवेचन जरूरी है । 'लम्बी कविता' उदर से विश्रृंखल और अराजक लग सकती है पर वह भीतर से संगठित हो सकती है । अनेक प्रसंगों, कथात्मक अंशों, सन्दर्भ संकेतों और बिम्ब-प्रतीकों का असम्बद्ध सा दिखने वाला वर्णन-चित्रण इसमें रह सकता है । पर इस असम्बद्धता में ही सम्बद्धता और अन्विति के आंतरिक सर्जनात्मक सूत्र विद्यमान रह सकते हैं ।[1] आकस्मिक नहीं है कि शमशेर ... (मुक्तिबोध का मूल्यांकन अगली पीढ़ी पर सौंपते हैं और 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' संग्रह की प्रतिनिधि कविता 'अंधेरे में' पर विचार अभिव्यक्त करते हैं कि "यह कविता देश के आधुनिक जन इतिहास का, स्वतन्त्रतापूर्व और पश्चात् का एक दहकता हुआ दस्तावेज है । इसमें अजब और अद्‌भुत रूप से 'व्यक्ति और जन' का एकीकरण है ।"[2] प्रभाकर माचवे ने द्वितीय महायुद्ध के दौरान रची गयी, पिकासो की विश्व प्रसिद्ध पेण्टिंग्स गुएर्निका इन वर्स' से इसकी तुलना की है जो हिटलर मुसोलिनी की फासिस्ट प्रवृत्ति के विरोध में रची गयी थी । प्रकारान्तर से 'मुक्तिबोध कृत 'अंधेरे में' नामक कविता की विषयवस्तु अपने फैण्टेसी शिल्प सृजन में, मोहभंग की त्रासद स्थिति में आततायी शक्तियों और प्रतिबद्ध रचना-कारों की पहल को रेखांकित करती है ।

लम्बी कविताओं की संरचना एपिक फार्म की संरचना होती है, जो युगबोध और ऐतिहासिक अन्तर्विरोधों को कलात्मक ढंग से प्रक्षेपित करती है । लम्बी कविता की संरचना में गत्यात्मक इतिहास के आपसी अन्तर्विरोधी वर्गों की टकराहट देखी जा सकती है । यह टकराहट सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों के आपसी संघर्ष की भी हो सकती है । जिसके अभिव्यक्त शिल्प में रचनाकार की रोमांटिक प्रवृत्ति, वैचारिक अवधारणा और जनसंघर्ष की प्रतिबद्धता या तटस्थता को देखा जा सकता है । उदाहरण हेतु 'राम की शक्तिपूजा' में निराला की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना मिथकीय धरातल पर अभिव्यक्त होती है । पर उसके प्रतीकात्मक एवं मिथकीय शिल्प में मानवीय चेतना के अवगाहन की प्रवृत्ति स्पष्ट है । मुक्तिबोध के रचनाशिल्प और

लम्बी कविता की संरचना में, ऐतिहासिक अन्तर्विरोध और जनसंघर्ष की प्रतिबद्धता को सिद्धान्त और व्यवहार 'थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस' के पारदर्शी रूप में देखा जा सकता है । जहाँ रचनाकार की विचारधारा और जीवन कर्म में कोई अन्तर नहीं है ।

शमशेर के विचारानुसार मुक्तिबोध का काव्य वाल्ट व्हिटमेन और मायकोवस्की के सिल्प और शक्ति से टक्कर लेता है और अपनी जमीन पर अप्रतिहत रहता है । यह अलग बात है कि रामविलास शर्मा अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति के कारण मुक्तिवोध की विचारधारा के प्रति एक अलग अवधारणा रखते थे कि वे अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद से मुक्त नहीं हो पाये और मार्क्सवाद को पूर्णतः आत्मसात नहीं कर पाये । जबकि नामवर सिंह, इन्द्रनाथ मदान, रमेश कुन्तल, मेघ, केदारनाथ सिंह आदि उन्हें मार्क्सवादी चेतना का प्रतिवद्ध रचनाकार मानते हैं ।

कहना न होगा कि प्रत्येक रचनाकार आलोचक अपनी विचार दृष्टि, विवेक दृष्टि और कलादृष्टि सम्बन्धी विजन से अन्यान्य रचनाकारों का विश्लेषण करना चाहता है । पर इसमें कोशिश रचनाकार की मान्यताओं और कला दृष्टि के अनुरूप होनी चाहिए । कभी-कभी एक ही विचारधारा के रचनाकार और आलोचकों में कतिपय पूर्वाग्रहों से अन्तर आ जाता है विवेक सम्मत निष्कर्ष में । उदाहरण हेतु मार्क्सवादी आस्थाओं के आलोचक रामविलास शर्मा और नामवर सिंह दोनों मुक्तिबोध के काव्य सृजन और शिल्प विवेचन में मतैक्य नहीं रख पाते हैं । प्रभाकर माचवे अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता में प्रगतिशील है इसीलिए वे 'अंधेरे में' कविता की संरचना के अन्तर्गत जिन्दगी के अंधेरे बन्द कमरों में चक्कर लगाती आकृति, पहाड़ी के उस पार निस्तब्ध जल में उभरती-कुहरील श्वेत आकृति की 'मुस्कान में' (प्रभाकर माचवे) कहीं अज्ञेय की सुनी-ध्यानी महाकस्सप की मुस्कान देखना नहीं चाहते हैं । जो पद्मपाणि बोधिसत्व के कमल की ओर अर्द्धनिमीलित नयनों को देखते हुए उपजी थी ।[3] कारण रचनाकार को उसके अपने अभिमत एवं सिद्धान्तों के आलोक में विश्लेषित करना श्रेयस्कर है ।

मुक्तिबोध की काव्य संरचना फैंटेसी शिल्प में ही अभिव्यक्त होती है । जिसमें कल्पना और यथार्थ के मिले-जुले चित्र उपलब्ध होते हैं । वे यथार्थ की विसंगतियों को काव्य-कल्पना के स्तर पर वर्ग-संघर्ष के पात्रों में, परिवेश में रेखांकित करते हैं । कहना न होगा कि मुक्तिबोध की रचनाओं में यथार्थ के गतिशील एवं गुम्फित चित्र उपलब्ध होते हैं । वे अनुभूति के स्थान पर विचार को, प्रगीतात्मक संवेदना की जगह यथार्थ को, आत्मानुभूति की जगह आत्मकथ्य की जटिल संवेदना को तरजीह देते हैं । उनकी 'अंधेरे में' नामक कविता की संरचना स्वातंत्र्योत्तर काल में रचनाकार के वैचारिक अन्तर्विरोध को 'आत्म चेतना और युगीन परिवेश' की टकराहट में दिखलाती है । यह कविता प्रकारान्तर से रचनाकार के स्वानुभूत आदर्श, विवेक प्रक्रिया और क्रियागत परिणति के विविध स्तरों को काल बद्ध आयाम में दर्शाते हैं ।

आकस्मिक नहीं है कि केदारनाथ सिंह उन्हें गहरे अर्थों में 'कालबद्ध कवि' की संज्ञा देते हैं । पर यह काल बद्धता उनकी कोई सीमा नहीं है बल्कि एक ऐसी विलक्षण ऊर्जा है जो अपने समय के प्रति गहरी रागात्मक सम्पृक्ति से पैदा होती है । पिकासो और मुक्तिबोध की नियति एक ऐसी है दोनों की जड़ें अपने समकालीन इतिहास में गहराई तक धँसी हुई है । वे श्रेष्ठ या कालजयी होने की क्षमता वहाँ से अर्जित करते हैं, जहाँ वे सबसे अधिक कालबद्ध होते हैं ।''[4] अपने ऐतिहासिक दौरे की द्वन्द्वात्मक शक्तियों को चीन्हने और रूपायित करने की कोशिश हर प्रतिबद्ध रचनाकार करता है । साथ ही साथ वह पाठकों की चेतना के रूपान्तरण के लिए 'संघर्ष चेतना' को सम्प्रेषित करने की प्रक्रिया में कालबद्ध होकर ही सामाजिक सरोकारों से कालजयी रचनाकार बनता है ।

विवेच्य 'अँधेरे में' नामक कविता की संरचना का परिदृश्य 1947 से लेकर 1962 तक का है । जिन दिनों नेहरू सत्ता का खोखलापन उजागर हो रहा था और भारत-चीन सीमा संघर्ष की घटना घटी । 'अंधेरे में' कविता की पृष्ठभूमि में गोली काण्ड और मार्शल ला आदि का जिक्र है । उसका सम्बन्ध नागपुर में मजदूर वर्ग पर गोली काण्ड की घटना और लेखकीय अभिव्यक्ति पर फासिस्ट शक्तियों द्वारा प्रतिबन्ध का भी है । 'नागपुर' रेडियो में मुक्तिबोध के सहकर्मी अनिल कुमार का लक्षित मुक्तिबोध में कहना है कि 'अंधेरे में' कविता की पृष्ठभूमि एम्प्रेस मिल के गोली काण्ड से सम्बन्धित है । विष्णुचन्द्र शर्मा ने 'मुक्तिबोध की आत्मकथा में इस गोली काण्ड की जो चर्चा की है उससे पता चलता है कि मुक्तिबोध घटनास्थल पर 'नया खून' पत्रिका के रिपोर्टर की हैसियत्त से मौजूद थे ।''[5]

हरिशंकर परसाई 'अंधेरे में' कविता की पृष्ठभूमि को युगीन परिवेश, शोषक एवं फासिस्ट प्रवृत्तियों से जोड़ते हैं । जिसका सम्बन्ध मुक्तिबोध की पुस्तक 'भारत : इतिहास और संस्कृति' पर प्रतिबन्ध और लेखकीय अभिव्यक्ति का दमन भी है । जिससे वे कई दिनों तक खोये-खोये से रहे । उनका सदमा राजनीति की भयंकर प्रतिक्रिया का परिणाम था । अपनी पुस्तक के जब्तीकरण को वह लेखक की विचार-स्वतन्त्रता और लेखन-स्वतन्त्रता के लिए खौफनाक मानते थे । xxx भोपाल में नेहरू के देहान्त का समाचार सुनकर अचेतन सी अवस्था में ही मुक्तिबोध शोकाकुल होकर कह उठे थे, 'पार्टनर, बस अब फासिज्म आ जाएगा ।''[6] सुधी पाठक यह भी जानते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर दौर के ऐतिहासिक परिवर्तन में हमारे महामानव गाँधी, तिलक, सुभाष चन्द्र बोस और भगत सिंह अपनी आचरणशीलता से पुनः प्रासंगिक हुए हैं कारण भ्रष्ट राजनीति अवसरवादी बुद्धीजीवी तथा पूंजीवादी तंत्र का शोषण अपनी अधिकतम सीमा तक पहुँच गया था । ये सारे कथ्य एवं सन्दर्भ मुक्तिबोध की काव्य रचनाओं में; फैण्टेसी शिल्प में उभरकर आये हैं ।

मुक्तिबोध प्रतिबद्ध रचनाकार होने के नाते अपनी पक्षधरता को स्वानुभूत आदर्श की 'आत्माभिव्यक्ति' में तलाशते हैं, विवेक प्रक्रिया के अन्तःसंघर्ष से गुजरकर क्रियात्मक परिणति तक अस्मिता के विलयन की प्रक्रिया अपनाते हैं । इन सभी पड़ावों और कोशिशों का जायजा उनकी 'आशंका के द्वीप' 'अँधेरे में' नामक कविता में लिया जा सकता है । जिसमें स्वातंत्र्योत्तर परिवेश एवं कालबोध के अन्तर्विरोधी वर्गों का संघर्ष, 'काव्य नायक के अनुभव', 'आत्माभिव्यक्ति का संघर्ष', 'अस्मिता की तलाश', रक्तालोक स्नात पुरुष का आदर्श भाव, मृतकदल की शोभायात्रा एवं अस्मिता की तलाश व अस्मिता के विलयन का भाव भी है ।

मुक्तिबोध रचनावली' के सम्पादन कर्म के दौरान नेमिचन्द्र जैन ने इस कविता का रचनाकार 1957 से 1962 तक संभावित बतलाया है । 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के प्रकाशन और मुक्तिबोध की 'मृत्यु (11 सितम्बर 1964) के बाद 'आशंका के द्वीप : अँधेरे में' कविता का प्रकाशन हैदराबाद की 'कल्पना' पत्रिका (नवम्बर 64) में हुआ है । स्वातंत्र्योत्तर काल के अस्थिरता वाले दौर, नेहरू सत्ता के प्रति जनविक्षोभ तथा चीन-भारत के सीमा संघर्ष के परिणामस्वरूप भारतीय जनता के मोहभंग वाले सारे सन्दर्भ एवं फॉसिस्ट प्रवृत्तियों के दमनरूप रचनाकार के सामने मुखर हो चुके थे । तब कतिपय रचनाकार राष्ट्रकवि के रूप में मगन थे, कतिपय समाचार पत्रों, दूतावासों, रेडियो और कतिपय विश्वविद्यालयों-अकादमियों की शरण में आत्म-संतुष्टि एवं अज्ञेयीय आत्मगौरव की मुद्रा अपना चुके थे । कतिपय रचनाकार अपनी प्रतिबद्धता विचारधारा और जीवन शैली में प्रगतिशील भावबोध अपनाकर 'जनसंघर्ष के रूपान्तरण' की भूमिका स्वीकार करने लगे ।

मुक्तिबोध को युगीन परिवेश जटिल यथार्थ और रचनाकार के अभिव्यक्ति संघर्ष के मुद्दों पर रचनाकार के सही कर्म कौशल एवं प्रतिबद्ध रूप की, संवेदनशील आत्मा को ज्वलन्त चक्के पर संकल्प शक्ति के टापर चढ़ाने वाली परम अभिव्यक्ति की तलाश में 'अस्मिता के विलयन' स्वरूप की यह रचना लगभग आठ खण्डों में लिखनी पड़ी । व्यवस्था के 'अंधेरे में' रचनाकर्म के 'आशंका द्वीप' और प्रतिरोध हेतु मनोविश्लेषणात्मक प्रक्रिया में अवसरवादी स्वार्थी चेहरों के मुखौटे कई चौराहों पर पूर्णतः अनावृत हो जाते हैं । 'मृतक दल की शोभा यात्रा' दरअसल काव्य गत संरचना में फासिस्ट प्रवृत्तियों और शोषण वर्ग का ही प्रारूप वर्णन है । काव्यनायक मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है, वह वर्ग-संघर्ष के परिवेश में व्यक्तित्वांतरण (dedass) होने की राह पर परमाभिव्यक्ति की खोज में निकल पड़ता है । वह विभिन्न पहाड़ों नदियों, सागर-घाटियों, मार्गों-वीथियों एवं कगार पर से गुजरते हुए समानधर्मा-साहयात्रियों fellow travellers में अपनी अस्मिता की खोज करना चाहता है । वह जन क्रान्ति की सोद्देश्यता के लिए समर्पित होना चाहता है । एक प्रकार से यह कविता रचनाकार

के 'काव्य व्यक्तित्व की पूर्णता' का प्रयास मानी जा सकती है । जिसके काव्य वाचक मुक्तिबोध प्रतीकात्मक रूप से अपनी अस्मिता की खोज के साथ-साथ जनचेतना के रूपान्तरण हेतु अपने व्यक्तित्व के विसर्जन एवं विलयन हेतु कृत संकल्प है ।

"मुक्तिबोध की काव्य संरचना में नैरेटर 'मैं' की शैली प्रस्तुत होती है । साथ ही एक प्रतिरोधी परिवेश, वर्णनात्मकता में 'परिपूर्ण व्यक्तित्व' की सर्जना भी संकेत शब्दों में जाहिर होती है । जिसे 'कवि व्यक्तित्व' और 'काव्य-व्यक्तित्व' का संशोधित रूप कहा जा सकता है । काव्यगत स्थितियों का नैरेटर कवि स्वयं है अतः कर्ता और कवि-व्यक्तित्व वाचक 'मैं' है और आत्मसम्भवा दुर्निवार परमाभिव्यक्ति का रूपक रक्तालोक स्नात पुरुष 'वह' है । सामान्य रूप से "मैं" और "वह" का तनाव बाहर चल रहे अंधेरे और प्रकाश के संघर्ष तथा काव्य मानस के भीतर चल रहे अवचेतन लोक में 'अंधेरे और चेतन प्रयास' के प्रतीकात्मक रूप है । फैण्टेसीगत शिल्प में 'कल्पना और यथार्थ के स्तर पर विवेक संघर्ष और सोद्देश्य कर्म की दुहरी कथाएँ अभिव्यक्त होती हुई आपस में जुड़ जाती हैं और जुड़कर एक जटिल संवेदना और नाटकीय विन्यास की सर्जना करती हैं ।

मुक्तिबोध की काव्य संरचना फैण्टेसी शिल्प में ही अभिव्यक्त होती है । जो यथार्थ के स्तर पर युगीन अन्तर्विरोधों, मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के आत्मसंघर्ष को दर्शाती है साथ ही कल्पना के स्तर पर विराट, भव्य एवं अभूतपूर्व भयावह बिम्बों की सर्जना करती है जो कहीं-कहीं यथार्थ के प्रतिरोध में, काल्पनिक संसार की रचना है । उनकी चिन्ता यथार्थ और स्वप्नतंत्र के कलात्मक विन्यास में प्रकट होती है । जिसे हम फैण्टेसी शिल्प, स्वप्न तंत्र, स्वप्नों की चित्रशाला 'स्ट्रीम आफ अनकान्शियसनेस' अवचेतन की प्रवाहमय धारा भी कह सकते हैं । हमारे युग के ऐतिहासिक यथार्थ को अभिव्यंजित करने वाली यह लम्बी कविता 'आठ खण्डों' में वर्णित है ।

कविता के प्रथम खण्ड में जिन्दगी के अँधेरे कमरों में, तिलिस्मी खोह में कोई एक वह चक्कर काट रहा है, काव्यवाचक 'मैं' को 'परिकल्पित' वह दिखायी नहीं पड़ता है । उसका चेहरा दीवार पर फूले हुए पलस्तर से अंकित होता है । उस अनजान आकृति के प्रति काव्य नैरेटर 'कर्ता' के मन में प्रति प्रश्न कौंधता है कौन मनु ?... यहाँ कविता की फैण्टेसी-स्वप्न तंत्र सी शैली शुरू होती है... पहाड़ी के पार तालाब के तमश्याम शीशे में कोई श्वेत-आकृति उभरती है । तिलिस्मी खोह का शिलाद्वार खुलता है । लाल-लाल मशाल की रोशनी में रक्तालोक स्नात पुरुष सामने साक्षात रूप में दिखायी पड़ती है । काव्य नायक अवचेतन के स्तर पर उस 'वह' का स्वरूप अनुभव करता है -

"वह रहस्यमय व्यक्ति/अब तक न पायी गयी अभिव्यक्ति है । पूर्ण व्यवस्था वह/हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह/आत्मा की प्रतिमा ।"

जो काव्यवाचक 'मैं' का ही अभिलक्षित जीवनाकांक्षा का पूर्ण स्वरूप 'Miror image' वाला व्यक्तित्व है । जो कवि व्यक्तित्व की पूर्णता वाला रूपक है । रोशनी करने वाली मशाल परिस्थितिवश हवा से बुझ जाती है और काव्य नायक अचेतन की स्थिति में लौट आता है ।

कविता के दूसरे खण्ड के अन्दर 'मैं' वह 'वह' का तनाव दुबारा उभरता है । यहाँ कवि चेतना के आत्म Self और स्वचेतना Self-conciousness की टकराहट है । 'वह' द्वार की साँकल बजाता है । वह द्युतिमय मुख प्रेमभरे भाव में बाहर खड़ा है । काव्यनाक की सुविधा का ख्याल करे बगैर वह कभी आ धमकता है । वह रहस्यमय आकृति काव्यनायक को पहाड़ी के तुंग शिखर के खुरदुरे कगार तट पर ला विठाती है । वह रहस्यमय आकृति रस्सी के पुल पर चलकर पर्वत संधि के गड्ढे-गद्वर पार कर दूर के शिखर कगार पर पहुँचने के लिए कहती है । कवि को ऊँचाइयों से डर लगता है । वह असमंजस भाव से संशयग्रस्त होता है पर उस परमाभिव्यक्ति के विक्षोभ को बर्दाश्त भी नहीं कर पाता है -

"क्या करूँ क्या नहीं करूँ, मुझे बताओ,
विवेक विक्षोभ महान उसका
तम अंतराल में (सह नहीं सकता)

फिर किसी के द्वारा आहट करने पर दरवाजा खोलने के लिए काव्यनायक उठता है । स्वप्न-तंत्र में, पर

"आत्मा के भीषण/ सत्चित वेदना जल उठी
दहकी/ विचार हो गये विचरण सहचर ।"

कहना न होगा कि मुक्तिबोध के यहाँ सामाजिक सरोकार का मस्तिष्क भाव ही आत्मा के रूप में प्रयुक्त होता है । काव्यवाचक 'सत्य' के पक्ष में है । वह अपने वर्गमित्रों को ही सहचर रूप में पाता है । निम्नवर्ग के शोषक के प्रति उसके मन में भीषण वेदना व विरोध है । जो कि यथार्थवादी रचनाकार की प्रवृत्ति है । पर भाववादी आलोचक विद्यानिवास मिश्र अपनी रचना व विवेक दृष्टि के अनुरूप उपर्युक्त काव्य-अवतरण सन्दर्भ में सच्चिदानन्द की हॉकी इस सत्-चित् वेदना में देखते हैं । उनके शब्द हैं - "मुक्तिबोध का काव्य ऐसा नर काव्य है, जिसमें नारायण की आँखों की व्यथा भरी है ।"[7] साहित्य का सामान्य पाठक भी जानता है कि मुक्तिबोध प्रगतिशील विचारधारा के, मार्क्सवादी आस्थाओं के सशक्त विचारक रहे हैं । उन्होंने अपनी संवेदना एवं जीवनानुभवों को बहुत ही विवेक प्रक्रिया से प्रस्तुत किया है । वे विशुद्ध कल्पना जगत की अपेक्षा यथार्थ की विभीषिका के रचनाकार हैं, अन्तर्मन की निजी अनुभूतियों की अपेक्षा ऐतिहासिक युग चेतना के हस्ताक्षर हैं, भाववादी भ्रम की जगह वास्तविकता के चितेरे रहे हैं और यह वास्तविकता अनिवार्य रूप से दिक् और

काल, भूगोल और इतिहास, व्यक्ति और समाज चरित्र और परिस्थिति, आलोचक मन और आत्म-व्यक्तित्व, अन्तर्मन और वाह्य परिवेश के ताने-बाने में घनिष्ठ में अनुस्यूत रहती है ।

मुक्तिबोध अपनी काव्य संरचना में वास्तविकता और काव्य सर्जना के लक्ष्य को फैण्टेसी शिल्प में तानते हैं । उनका काव्य नायक व्यवस्था के 'अँधेरे में' टटोल कर ही आत्मानुभव एवं विवेक की मिली-जुली स्थिति में धरती के फैलाव और आकाश में मस्तष्क को अनुभव करता है । यह बोध और रूपक-प्रयोग उनकी 'एक अन्तर्कथा कविता के भी है । जहाँ काव्यनायक रचनाकार के रूप में अपने पैरों की जड़ें पृथ्वी के यथार्थ में और अपने हाथों में ज्ञान का नभस थामे हुए हैं... यहाँ काव्य नायक सर्जक के रूप में देव-आकृति में है । 'अंधेरे में' काव्यवाचक की आँखें यथार्थबोंध के कारण तथ्य को सूँघने लगती है और स्पर्श की गहरी शक्ति जागती है । केवल बाहर वाला 'वह' रहस्यमय प्राणी अब चला गया है । रात के सूनेपन में कोई पक्षी चीखकर कहता है वह चला गया है । उसको तू/खोज अब/उसका तू शोध कर/वह तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति/उसका तू शिष्य है/वह तेरी गुरु है/प्रकारान्तर से यहाँ 'अंतश्चेतना का सम्बन्ध ज्ञान की परिपूर्णता और सामाजिक सरोकार व उपादेयता से है... अस्तित्ववादी एवं मनोविश्लेषण की गहरी पर्तों में ।

तीसरे खण्ड के रूप की क्रान्ति के पूर्व की संक्रान्ति कालीन स्थिति के तालस्ताय का वर्णन कम प्रासंगिक नहीं है । कारण मुक्तिबोध वैश्विक चेतना 'जिनके कवि हैं अतः भारतवर्ष की चेतना के रूपान्तरण कर्म में,... अन्य प्रतिबद्ध रचनाकारों का अच्छे स्मरण हो आना स्वाभाविक है ।... रात्रि के सुनसान वातावरण में, वैचारिक रूप से मृतकदल के शोभायात्रा के जुलूस का वर्णन है । जिसको नग्न रूप में देख लेने की सजा मौत है । कहना न होगा कि यह मध्यवर्गीय मन की 'भयग्रस्त' स्थिति का आँकलन है जो हमेशा रक्तपात से, संघर्ष से बचना चाहता है । कारण यह भी है कि उसने शोभा यात्रा में चल रहे मंत्री, उद्योगपति, आलोचक, कवि, कर्नल ब्रिगेडियर सेनापति व कुख्यात डोमाजी उस्ताद को पहचान लिया था और वे भी उसे जान से मार देना चाहते हैं ताकि प्रतीकात्मक सन्दर्भों में दृष्टा की विवेक-दृष्टि का खात्मा हो जाये । वास्तव में मृत्यु दल की शोभायात्रा का वर्णन 'पूँजीवादी व्यवस्था' के वर्तमान स्वरूप का वर्णन है ।

चतुर्थ खण्ड में बरगद वृक्ष के नीचे सिरफिरे पागल का संकेत-सूत्र मिलता है । जो जागरित बुद्धि और प्रज्वलित घी भी है । इसी खण्ड में काव्यवाचक अपने स्वानुभूत आदर्श और विवेक प्रक्रिया के अन्तःसंघर्ष के बारे में, मध्यवर्गीय रचनाकारों के प्रतिनिधि स्वरूप में सोचता है -

"ओ मेरे आदर्शवादी मन/ ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन

अब तक क्या किया/ बहुत-बहुत ज्यादा लिया
दिया बहुत-बहुत कम/ ... मर गया देश
अरे जीवित रह गये तुम ।''

आत्मोद्‌बोधन के गीत गाने वाला पागल एक प्रकार से काव्य नायक का ही सहयात्री फेलोट्रेवलर्स है । कहना न होगा कि इस प्रकार के पागल-वाचक का एक प्रतिरूप हमें 'ब्रह्मराक्षस' कविता में भी उपलब्ध होता है । जो मध्यवर्गीय बुद्धि जीवी की छटपटाहट के रूप में उभरकर आया है । जहाँ जीवन और जनता से न जुड़ पाने का आत्मसंघर्ष है ।

पांचवे खण्ड में काव्यनायक परम्परा में श्रेष्ठ रचनाकार-कणों, मणिमय तेजस्क्रिय जीवनानुभवों को गुहावास के भीतर पहचानता है । अनुभव, वेदना के संघर्ष और विवेक निष्कर्षों को वह स्वप्नतंत्र में पहचानता है । जो विचारों के रक्तिम अग्नि के मणिमय रूप में प्राप्त होते हैं । कृत संकल्प चेतना के साथ वह स्थितियों से जूझना ही तय मानता है ।

कविता के छठवें खण्ड में सीन बदलता है । सिपाहियों की गश्त और टैंकों के दस्ते ऊँघने का जिक्र आता है । मृत्यु भय से दम छोड़कर भागने व कई मोड़ घूम जाने का वर्णन है । परम्परा के श्रेष्ठ अंशों के स्वीकार और अस्मिता की तलाश सम्बन्धी चित्र उपलब्ध होते हैं । आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया में, वैचारिक अन्तर्विरोध की स्थिति में काव्यनायक को तिलक की पाषाण पूर्ति हिलती नजर आती है । परम्परा के श्रेष्ठ, अंश ग्रहण के भाव में, स्वातंत्र्य चेतना व आत्मचेतस भाव के रूप में उनके पथरीले होठों पर मुस्कान के साथ अंग रखे पर खून के धब्बों का वर्णन है । जहाँ "विवेक चलाल तीखा सा रन्दा/चल रहा वसूल/छीले जा रहा मेरा निजत्व कोई ।" वाला वर्णन है । वेदना की थरथराहट में, सर्दी में बोरों को ओढ़े हुए गाँधी का प्रत्यक्ष दर्शन होता है । जो 'हम हैं गुजरे, गये जमाने के चेहरे/आगे तू बढ़ जा/का प्रबोधन देते हैं । द्युतिपुरुष के रूप में वे काव्य नायक को मानव शिशु सौंपते हैं । अंधकार भरी गलियों में चलते हुए वह शिशु कन्धे पर फूल के गुच्छे में तथा बाद में', ... रायफल के रूप में परिवर्तित हो जाता है । विवेच्य वर्णन क्रान्तिकारी चेतना के परिवर्तन का आभास होता है ।

'मानव शिशु' रूपी प्रतीक आगामी मानव समाज का सम्भावित रूप है । जिसके निर्माण हेतु पुरुष के गुच्छे की सी सुकुमार कल्पना चाहिए, आवश्यकता पड़ने पर हथियार-रायफल थामकर क्रान्तिरूपी परिवर्तन के लिए अमादा होना होगा । इसी काव्य खण्ड में एक एकांतप्रिय कलाकार के मारे जाने की खबर है, जो शुचितर विश्व के ... मात्र सपने पाले हुए था, पर वह कार्य क्षमता से वंचित था । (लगभग यही स्थिति ज्ञानी ब्रह्मराक्षस की रही) है जो विभिन्न दर्शनों, सिद्धान्तों, श्योरम का ज्ञाता

था । पर अपने ज्ञान में से किसी समायोजपयोगी धारणा या जनसमाज की भावना न रख पाने के कारण बाहरी और भीतरी पाटों के बीच पीसा गया, नीच ट्रेजेडी का शिकार हुआ) काव्य नायक के उस एकांतप्रिय कलाकार की मृत्यु के साथ एक युग एक जीवनादर्श खत्म होने का आभास पाता है और वह "सकर्मक सद्चित वेदना भास्कर" सहयात्रियों की तलाश में चल पड़ता है । अतः विद्यानिवास मिश्र का यहाँ नर-नारायण की पीड़ा का अध्यात्मबोधी सम्बन्धी विवेचन गलत सावित हो जाता है । कारण अध्यात्मवादी दर्शन केवल आत्मविकास और व्यक्ति-चेतना के विकास की अवधारणा जाहिर करता है । जिसके समर्थक विद्यानिवास मिश्र या राममूर्ति त्रिपाठी हो सकते हैं । परन्तु मिक्तिबोध प्रगतिशील चिन्तन के समष्टिबोध एवं विकास के कवि हैं । अतः उनका प्रतिनिधि काव्यनायक 'सत् चित् वेदना भास्वर' सहयात्रियों की तलाश में सक्रिय है ।

विवेच्य छठवें खण्ड में सृजनशील अवचेतना और सामाजिक रूप से चेतना कर्म, बाह्य परिस्थितियों के दबाव और अन्तः संघर्षी मन का फैण्टेसीनुमा चित्र उपलब्ध होता है । कहीं-कहीं विराट और भयावह काव्यबिम्वों की सर्जना देखने को मिलती है । काव्य प्रसंग के अगले ही बन्द में, व्यवस्था के दबाव एवं शोषण का जिक्र है । जिसमें कॉलर दबाने, गाल की त्वचा उखड़ जाने, बड़े-बड़े टावर गिरने व काव्य नाटक के शीश की हड्डी तोड़कर, उसके मस्तिष्क के स्क्रिनिंग की जाती है । सच्चे स्वप्नों के आशय एवं क्षोभक स्कोरक सामान की तलाशी ली जाती है । प्रस्तुत सन्दर्भ में आचार्य विद्यानिवास मिश्र को मालूम होना चाहिए कि यह कार्यवाही किसी यमराज के दरवार में नहीं हो रही है बल्कि इसी महादेश की पुलिस व सत्ता व्यवस्था अमूनन प्रतिवद्ध रचना कर्मियों के साथ करती है । इसी प्रजातंत्रात्मक देश में राहुल सांकृत्यायन को हथकड़ी लगी थी, फणीश्वरनाथ रेणु को जेल जाना पड़ा था, निराला विक्षिप्त हुए थे और सव्यसाची, निर्मल शर्मा आदि को हवालात जाना पड़ा । चेरवण्डा राजू, ज्वालामुखी और एम. टी. खान को सिकन्दराबाद कान्सपिरेसी केस का सामना करना पड़ा । जबकि सत्ता-व्यवस्था के टहलुए व ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त अज्ञेय, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पन्त और दिनकर तो अपनी चितकवरी चाँदनी, विरह-व्यथा, रहस्यमयी मुद्रा और काम अध्यात्म की सारणियों पर 'कितनी नावों में कितनी वार', 'दीपशिखा', 'चिदम्बरा' और 'उर्वशी' की तलाश में अस्मिता का वरण करते रहे हैं । धन्य हैं वे ! महान हो सकते हैं वे । जो हमारे, वदहाल, वेरोजगारी महँगाई और आतंकपूर्ण परिवेश में, भ्रष्ट राजतंत्र और आपाधापी वाले प्रजातंत्र में काल्पनिक यूरोपिया निर्मित करते रहे हैं । जीवन और काव्य, यथार्थ और अस्मिता की जाँच-पड़ताल अभी भी हमारे सुधी पाठकों व रचनाकारों को 'राष्ट्रव्यापी दुर्व्यवस्था' के प्रतीक 'अँधेरे में' नामक लम्बी कविता की संरचना और फैण्टेसी शिल्प विधान में करनी होगी ।

कहना न होगा कि 'आशंका के द्वीप : अँधेरे में' नामक लम्बी कविता के ऐपिक फार्म में जीवन के परिपूर्म स्वस (Mirror-image) परम-अभिव्यक्ति की खोज और विवेक प्रक्रिया से विलयन भाव अनुस्यूत है । जो किसी अनाम 'नहीं के द्वीप' की खोज नहीं है बल्कि स्वातंत्र्योत्तर दौर के भ्रष्ट और आततायी शासन के वीच ज्यूलिस फ्यूचिक के जेल से प्राप्त होने वाले गुप्त संदेश वाले नायक की प्रतीक्षा है । यह 'वेटिंग फॉर गोदो' है । काव्य नायक क्षितिज पर दिखते हुए बिजली के फूलों को देखता है जमीन पर पड़े चमकीले पत्थरों से विजली के फूल, रश्मि विकीरण वनाने का प्रयास करता है । यहाँ अन्यान्य छायावादोत्तर काल के रचनाकारों की तरह मुक्तिवोध भी प्रसाद के काव्य प्रयोगों एवं काव्य भाषा से प्रभावित रहे हैं । काव्य नायक अपने असंतोष, काव्याभिव्यक्ति का अभाव महसूस करता है कि केवल रंगीन पत्थर फूलों से (रोमांचिक बोध या ग्लदाश्रु भावुकता, विरह-भावना, करुणा) से काम नहीं चलेगा । नामवर सिंह का अभिमत इस सन्दर्भ में रहा है कि "अरे, इन रंगीन पत्थर फूलों से काम नहीं चलेगा" तो वे स्पष्टतः उस आत्मपरक जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि को तिरस्कृत कर रहे थे ।"[8] काव्यनायक मैं की शैली में अपनी विवेक-प्रक्रिया से यह अनुभव करने लगता है कि उसके 'मस्तक-कुण्ड' में सत्-चित् वेदना है । सच्चाई व गलती की उसे पहचान हो चुकी है । जिससे वह मस्तिष्क शिराओं में दिन-रात तनाव महसूस करता है ।

मुक्तिबोध काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते रहे हैं । वे काव्य-कर्म की अस्मिता में, जन क्रान्ति की प्रक्रिया को आवश्यक मानते रहे हैं । वे चेतना के रूपान्तरण कर्म में प्रतिबद्ध भाव से अपने को विलयित करने की प्रक्रिया में, कृत संकल्प भाव से सोचते हैं कि परम्परागत 'कथ्य एवं रूप' के पैटर्नों को, शिल्प के साँचों को, अभिव्यक्ति के स्वरूपों को तोड़ना होगा । वैसे भी प्रतिवद्ध रचनाकार अपनी यथार्थवादी अभिरुचि से, अपनी सीमाओं से परे जाकर जन-चेतना के रूपान्तरण की प्रविधि अपनाते हैं । यथा -

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे/उठाने ही होंगे/तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार तब कहीं देखने में मिलेगी हमको/नीली झील की लहरील बाहें/जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता/अरुण कमल.. ।।"

प्रस्तुत अवतरण में अभिव्यक्ति के खतरे केवल काव्यजगते और अभिव्यक्ति के खतरे नहीं हैं । काव्यनायक को अहसास है कि केवल मेरी कविता से कार्य नहीं चलेगा । बकौल अशोक चक्रधर के कविता के दूसरे खण्ड में रक्तालोक स्नात पुरुष द्वारा वाचक नायक को पर्वत सन्धि के गद्वर खण्डों को पार करने के आदेश दिए जाने पर काव्य वाचक ने स्वयं को कमजोर अवस्था में अचेतन अंधकार के गड्ढे में पाया था, लेकिन विवेक प्रक्रिया की अव तक की यात्रा में अव उसके पास अपने

संकल्प हैं । वह स्वयं दुर्गम पहाड़ों को पारकर उससे भी आगे नीली झल के अरुण कमल तक पहुँचना चाहता है ।''[9] अर्थात् दूसरे खण्ड में जो 'स्वचेतना' और कर्मचेतना का अन्तःसंघर्ष है, आत्मा व्यक्ति 'परिपूर्ण अभिव्यक्त' से जुड़ने का प्रयास है, वह छठवें खण्ड तक आते हुए कार्यसिद्धि की विवेक प्रक्रिया से जुड़ जाता है । 'अरुण कमल' का प्रतीक अपनी रंग सम्बन्धी अवधारणा के अनुकूल क्रान्ति की विचारधारा या उसके प्रारम्भिक स्वरूप को प्रतिबिम्बित करता है ।

परन्तु नन्दकिशोर नवल 'अरुण कमल' का अर्थ क्रान्ति की विचारधारा रूप में, प्रतीकात्मक रूप से ग्रहण नहीं करते हैं बल्कि वे उसे केवल सरलीकृत रूप से केवल क्रान्तिकारी कविता के रूप में चित्रित करते हैं । उनके शब्द हैं कि ''कहने की आवश्यकता न होनी चाहिए कि अभिव्यक्ति का सम्बन्ध यहाँ काव्याभिव्यक्ति से है और अरुण कमल का मतलब है क्रान्तिकारी कविता ।''[10] जबकि वे भूल गये हैं कि मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्र का रचनाकार कविता को कोरमकोर हथियार का विकल्प नहीं मानता है । वह काव्य सर्जना को वैचारिक अभिव्यक्ति का, जनचेतना के रूपान्तरण का माध्यम मान सकता है पर केवल हथियार नहीं । अतः अरुण कमल किस रूप में क्रान्तिकारी कविता का विकल्प बन सकता है ? कारण केवल कविता पढ़कर किसी ने क्रान्ति नहीं की है । मार्क्स का प्रसिद्ध कथन रहा है कि ''आलोचना का हथियार'' हथियारों द्वारा की जाने वाली आलोचना की जगह कतई नहीं ले सकता । भौतिक शक्ति निश्चय ही भौतिक शक्ति द्वारा परास्त की जानी चाहिए । वैसे भी मार्क्सवाद 'सिद्धान्त और व्यवहार' Theory and Praxis का दर्शन है कोई अनात्मवादी अद्वैत पलायन नहीं ।

''सातवें खण्ड में चाँद के उग आने एवं महकती रातरानी के लज्जित होने का बिम्ब उभरकर आया है । काव्यनायक को प्रतीत होता है कि लोग उसकी विक्षोभ मणियों और विवेक-रत्नों को लेकर 'अँधेरे में' सोत्साह बढ़ रहे हैं । किन्तु वह यथार्थ के स्तर पर अकेला है, लेकिन बौद्धिक कल्पना और ख्यालों की जुगाली में अपने से दुकेला है । कारण स्पष्ट है कि वह अभी भी वर्ग समूह से अपनी वर्गाभिरुचि से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया है । वह डिक्लास होने अर्थात् 'व्यक्तित्वांतरण' होने की प्रक्रिया से जुड़ा है । 'भागते हुए अँधेरे में' (दुर्व्यवस्था आतंक, मार्शल ला) की स्थिति में उसे कोई पर्चा दे जाता है । जो विप्लवी शक्तियों का परिचायक है । पर्चे के विचार उसे अपने ही विचार प्रतीत होते हैं ।

विवेक प्रक्रिया में, ... विश्व चेतस दृष्टि से उसे 'दिक्काल दूरियाँ/अपने ही देश के नक्शे में टँगी हुई /रंगी हुई लगती हैं । वह स्वप्नों की पूर्ति तामीर करने लगता है । 'अँधेरे में' उसे अपनी आत्माभिव्यक्ति की पहचान होने लगती है । वह विश्व की साम्राज्यवादी शक्तियों का, पूँजीवादी शोषण व्यवस्था का तिलिस्मी भेद पा लेता है ।

तब उसे डिक्लास व्यक्तित्वांतरित होने की प्रक्रिया में यह भी आभास होता है कि 'स्वप्नों की मूर्ति... उद्‌भत क्रियाशील किरणें/ब्रह्माण्ड भर में नाप लेगी सब कुछ/... काव्य नायक अपनी साम्यवादी आस्थाओं के अनुरूप जनक्रान्ति की दहलीज पर सीधे-सीधे कहता है, अपने विचारों को प्रक्षेपित करता है -

"कविता में कहने की आदत नहीं, पर
कह दूँ। वर्तमान समाज चल नहीं सकता
पूँजी से जुड़ा हृदय नहीं बदल सकता
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी। छल नहीं सकता
मुक्ति के मन को। जन को... ।"

काव्यवाचक 'नेरेटर' को पूँजीवादी शोषक शक्तियों की पहचान है । दिक्-काल की दूरी को तयकर विश्व पर हावी होने वाली साम्राज्यवादी शोषण तंत्र की रूपरेखा उसे मालूम है, जो मूलतः उपभोक्तावादी-पूँजीवाद के स्वार्थी तत्वों से जुड़े हृदयों की जाँच-पड़ताल है । अतः व्यक्ति-स्वातंत्र्य का पक्षधर आत्मचेतस कवि अपने जनकल्याण में क्रान्ति का अवगाहन कर उसे फैण्टेसी में, स्वप्न तंत्र में साकार देखने की पहल रचता है ।

जनसमाज में व्याप्त राष्ट्रीय दुर्व्यवस्था का जायजा 'आशंकाओं के द्वीप', संशय ग्रस्त 'अंधेरे में', आम आदमी को हो चुका है । बुद्धिजीवी, पत्रकार लेखक समाज का प्रतिबद्ध तबका इस स्थिति को बदलना चाहता है कई-कई मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी सत्ता व्यवस्था से नाभिनाल बन्द रूप से जुड़े हुए हैं । अतः 'अँधेरे में' नामक लम्बी कविता की एपिक संरचना में 'आठवें खण्ड' तक आते हुए वास्तविक स्थितियों का पर्दाफाश हो चुका है । पूँजीवादी सत्ता-व्यवस्था दमनचक्र चला रही है, देश के स्तर पर और विश्व के स्तर पर भी । अतः कहीं आग लगी है और कहीं गोली चल गयी है । पथरीले चेहरों, खाकी ड्रेस, मोर्टार, टैंक-दस्तों की आवाजाही हो रही है जो सत्ताधारी वर्ग के नुमाइन्दे हैं । स्वातंत्र्योत्तर दौर में हमारा अधिकांश बौद्धिक वर्ग पूँजीवादी व्यवस्था का क्रीतदास बनने में, रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल रिश्ता जोड़ने में अपने कर्म की सौभाग्यश्री और इतिश्री मान रहा है ।

आम जनता के बीच आतंक, संशय, तनाव की स्थिति कायम है । कर्फ्यू और मार्शल ला की स्थिति कमोवेश जारी है, कहीं आग लगी है कहीं गोली चली है । काव्यवाचक अपनी जान बचाने के लिए दम छोड़ भाग रहा है, कहीं उसके शीश की हड्डी तोड़ी गयी है, क्रॉस एक्जामिन और स्क्रीनिंग की स्थिति आयी है । उस स्थिति में पूँजीवादी व्यवस्था के नाभिनाल बद्ध स्वार्थी रचनाकारों की प्रतिक्रिया निम्न रूप में दिखायी पड़ती है -

"सब चुप, साहित्यिक चुप और कविगण निर्वाक

चिन्तक शिल्पकार नर्तक चुप हैं x x x
रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल बद्ध ये लोग
नपुंसक भोग-शिरा से पहचान/ राह से
अनजान बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास
कि नये के विचारों का उदभास... /''

जिन स्वार्थी तत्वों, वर्गों की शोभायात्रा काव्यवाचक ने पूर्वकाल में देखी थी, विवेच्य कविता के तीसरे खंड में जो मृत्युदल... प्रकाण्ड पंडितों, साहित्यकारों, सम्पादकों, पत्रकारों को शोभायात्रा में शामिल कर मध्यरात्रि में सक्रिय रूप से गुजर रहा था, उन्हीं में कई अवसरवादी रचनाकारों एवं बुद्धिजीवियों की वर्तमान स्थिति से उसे विक्षोभ होता है । लेकिन साथ ही साथ कतिपय प्रेरक शक्तियाँ, क्रान्ति चेता व्यक्तित्व, रक्तालोक स्नातपुरुष (दीन हीन मजदूर वर्ग का संघर्षशील प्रतिरूप) स्वातंत्र्य चेता सिरफिरे पगला भी सक्रिय है । ज्ञानबोध के सूक्ष्म पल में काव्यवाचक को सैकड़ों साक्षात्कार होते हैं, रक्त में बहती ज्ञान की किरणें दिख जाती हैं, विश्व चेतस मूर्ति (World Vision) व वर्ग विहीन समाज की स्वप्न, कल्पना जाग्रत होती है । राह के पत्थर, मिट्टी के लौंदे, धूल के कण, वात्याचक्र बवण्डर में घूम जाते हैं । जो निम्न मध्यवर्ग की संघर्षशील चेतना के क्रान्तिरूप में, जन क्रान्ति स्वरूप के प्रतीक बन जाते हैं । बड़े-बड़े गार्डर और खण्भे घूम जाते हैं ।

काव्यनायक अपनी परमाभिव्यक्ति की तलाश में, अस्मिता के विलयन की प्रक्रिया में... संकल्प शक्ति के/लोहे के मजवूत ज्वलंत टायर का/आत्मा के चक्के पर चढ़ाया जाना ।'' महसूस करता है । काव्य नायक (जो नैरेटर - काव्य वाचक भी है लेखकीय व्यक्तित्व का प्रतिरूप) सोचता है ''अब युग बदला है वाकई ।'' जिससे क्रान्ति की लहर फैलने के विम्ब सामान्य पाठकों के सामने उभरकर आते हैं । यथा- 'गेरुआ मौसम उड़ते हैं अंगार/जंगल जल रहे हैं जिन्दगी के अब । वेदना की नदियों से, सैकड़ों नदियों के बिम्ब/प्रतिपल प्रसारित हो रहे हैं ।'' मुक्तिवोध की काव्य संरचना के में विराट्, विकट और भयावह बिम्बों की सर्जना उपलब्ध होती है जो हमारी मानवीय संवेदनाओं को इस तरह स्पर्श करती है कि हम अगर आत्मचेतस पाठक हों तो उसे आत्मसात करे बगैर नहीं रह सकते ।

सारांशतः मुक्तिवोध की काव्य संरचना में काव्य बिम्बों की अभूतपूर्व सर्जना इतिहास चेतना, युगबोध, कवि कर्म, सम्प्रेषण और डिक्लास होने के सन्दर्भ दिखायी पड़ते हैं । उपर्युक्त उद्धरण में ''सैकड़ों नदियों के ज्वलन्त बिम्ब... विगत इतिहास चेता व्यक्तियों के संघर्ष सम्बन्धी काव्य बिम्ब हैं । वेदना-नदियों की प्रतीकात्मकता में, विवेक पीड़ा की गहराई में काव्यवाचक को श्रमिक वर्ग के दुःखों का आभास मिलता है । इसी पीड़ा भरी नदी का जल पीने पर युवकों का, नवरचनाकारों का मानस रूप

'व्यक्तित्वांतरित-डिक्लास होता है । जिससे 'अस्मिता की खोज' एवं 'अस्मिता का विलयन' सम्बन्धी प्रतिबद्ध भाव गहराता है । मुक्तिबोध यहाँ व्यक्तित्वांतरित होने की विवेक प्रक्रिया में अपनी मध्यवर्गीय अभिरुचि त्यागकर आम जनता से जुड़ने की क्रियागत परिणति की ओर संकेत करते हैं -

"मेरे युवकों में व्यक्तित्वांतरण
विभिन्न क्षेत्रों में कई तरह के करते हैं संगर
मानों कि ज्वाला पंखुरी दल में घिरे हुए वे सब
अग्नि कमल के केन्द्र में बैठे
द्रुत वेग से बहती है शक्तियाँ निश्चयी ।"

काव्यवाचक को अन्तिम बन्द में 'स्वप्न भंग' होने पर एकाकी रह जाने का आभास होता है । पर यह अस्तित्ववादी हताशा निराशा, ऊब, टूटन, अनिश्चयवाला एकाकीपन नहीं है बल्कि फैण्टेसी में काव्य वाचक के अपनी वर्गाभिरुचि में डिक्लास हो जाने पर भी, स्वयं को वर्गीय मोहासक्तता से विमुक्त कर लेने पर भी,... अपनी मध्यवर्गीय स्थिति का भान है । वह वस्तुगत यथार्थ के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अपनी विवेक प्रक्रिया से अपने उद्देश्यों की क्रियागत परिणति के बीच महसूस करता है, रोमांटिक भावनाओं से, मानों कि "कल रात किसी अनापेक्षित क्षण में ही सहसा /प्रिम किया हो मनोहर मुख से/जीवन भर के लिए/मानों कि उस क्षण अतिशय मृदु किनहीं कोमल बाँहों ने आकर/कस लिया था मुझको/उस स्वप्न यथार्थ की/चुम्बन... घटना याद आ रही है, याद आ रही है । काव्य वाचक अपनी फैण्टेसी शैली में कल्पना और यथार्थ के मिले जुले पैटर्नों के बीच स्वप्नों की चित्रशाला में सोचता है कि वह 'अज्ञात प्रणयिनी कौन थी ! कौन थी ?"

"क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी ?
हाय ! यह वेदना स्नेह की गहर
जाग गयी क्यों कर ?"

यह मध्ययुगीन वीरों, नाईट्स या प्रेमी युगल की प्रेमिका के विम्ब में, रचनाकार मन की चीर अभिलक्षित वह आकांक्षा है जो क्रान्तिपरक परिवर्तन की प्रतीक है । कभी... मायकोवस्की ने भी क्रान्ति चेतना को प्रेमिका के रूप में देखने की पेशकश की है । उनका प्रसिद्ध कथन है कि "क्रान्ति को उसी तरह पुकारना चाहिए जिस तरह प्रेमी-प्रेमिका को पहले दिन के साथ में पुकारते हैं ।" कहना न होगा कि यहाँ प्रेमिका सम्बन्धी रूपक क्रान्ति चेतना व स्वातंत्र्य पूर्णता की प्रतीक चेतना का व्यावहारिक रूप है ।

काव्य वाचक क्रान्ति भावना के रोमांटिककरण के साथ-साथ ज्ञानार्जन की परम्परा को महान लेखकों के ग्रंथों में मूर्तमान मानता है । उन्हें प्रेरक तत्वों के रूप में स्वीकारता

हुआ कहता है - "डेस्क पर रखे हुए महान ग्रंथों के लेखक/मेरी इन मानसिक क्रियाओं के बन गये प्रेक्षक/मेरे इस कमरे में आकाश उतरा/मन यह गगन की वायु में सिहरा ।" यहाँ काव्य नायक ज्ञानार्जन परम्परा में अपनी अस्मिता खोज रहा है । जिसके आधार पर नामवर सिंह ने इस कविता की समीक्षा 'अस्मिता की खोज' शीर्षक से की है और जिसका समीकरण काव्यनायक द्वारा परिमाभिव्यक्ति की खोज से जुड़ता है । (कहीं यह नेहरू के 'भारत एक खोज' की तर्ज पर रचा गया मुहावरा या शीर्षक तो नहीं ?)

काव्य वाचक कभी रक्तालोक स्नातपुरुष को 'गुरु' मानता है और कभी अपनी संघर्षशील चेतना की परम अभिव्यक्ति के रूप में उसे परिकल्पित करता है । कविता के आठवें खण्ड में काव्यवाचक को वह परमाभिव्यक्तित रूपी 'अस्मिता-पुरुष' जनयूथ के बीच सक्रिय होकर विलुप्त होता दिखाई देता है । उसे पुकारने के लिए वह मुँह खोलता है । पर वह दिखता है और जनयूथ में खो जाता है । काव्यनायक की अनुभूति है -

"अनखोजी निज मृद्धि का वह परम उत्कर्ष
परम अभिव्यक्ति/ मैं उसका शिष्य हूँ
वह मेरी गुरु है/ गुरु है ।"

लगता है मुक्तिबोध 'अँधेरे में' नामक लम्बी कविता की फैण्टेसी शैली में अवचेतन प्रवाह धारा (स्ट्रीम ऑफ अन्कान्शियस) के अनुषंगों का प्रयोग करते रहे हैं । जिसके कारण काव्य नायक का आत्मविश्लेषण, रक्तालोक स्नात पुरुष का परिकल्पित भाव, मृतक दल की शोभायात्रा सिरफिरे पागल का राष्ट्रीय उद्‌बोधन, काव्यवाचक का आत्मसंघर्ष, स्क्रिनिंग प्रक्रिया, परमाभिव्यक्ति का गुरुभाव सम्भाव्य है । क्या हमारी मनीषा, थी ही हमारी गुरु है और परमाभिव्यक्ति का रूप ।

मुक्तिबोध ने फैण्टेसी को अनुभव की कन्या माना है जो प्रतीकात्मक रूप से हमारी अस्मिता की खोज है और विलयन का प्रतीक भी । आकस्मिक नहीं है कि ब्रह्मराक्षस कविता में भी काव्यवाचक गुरु गम्भीर पर लक्ष्य से भटके हुए ज्ञानी ब्रह्मराक्षस का सजल उर शिष्य बनना चाहता है । ताकि वह उसके अधूरे लक्ष्यों-निष्कर्षों तक पहुँच सके, पूरा कर सके । मुक्तिबोध स्पष्ट रूप से कहना चाहते हैं कि इस भ्रष्ट एवं संत्रस्त व्यवस्था रूपी अँधेरे में, कोई भी आत्मचेतस व्यक्ति अपने जीवनानुभवों में विवेक प्रक्रिया से गुजरते हुए अपनी कार्यगत परिणति को व्यक्तित्वांतरण और अस्मिता के विलयन-लक्ष्य से तय कर सकता है । बशर्ते वह स्वार्थी, अहंकारी प्रदर्शनप्रिय, एकाकी आत्मलीन रचनाकार और सत्ता व्यवस्था का चाटुकार न हो, पूँजीवादी व्यवस्था से नाभिनालबद्ध भोगसिरावाला बुद्धिजीवी न हो ।

काव्यनायक विभिन्न बिम्बों एवं रूपकों के माध्यम से परमाभिव्यक्ति की खोज... अर्थात् अस्मिता की खोज और डिक्लास-व्यक्तित्वांतरित होने की प्रक्रिया पर बल देता

है । जो वास्तव में समष्टिगत हितों के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों के विलयन की प्रक्रिया है - ज्यूलिस फ्यूचिक, तालस्ताय, तिलक गांधी की परम्परा में । सवाल विवेक प्रक्रिया के प्राप्त हो जाने का नहीं है बल्कि पक्षधर भाव से जनसंघर्ष में उसके, सर्वहारा वर्ग के पक्ष में प्रयोग करने के लिए है । अन्यथा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कहीं ब्रह्मराक्षस और कहीं औरांग उटांग की स्थिति में आवद्ध न हो जाये । यही मुक्तिबोध की काव्यसर्जना का 'अन्तर्कथा वाला' बोध है । काव्य नायक को समान धर्मा सहयात्रियों की तलाश है । साथ ही साथ परम अभिव्यक्ति की भी; जो पूर्णता की प्रतीक है । वह विवेक प्रक्रिया और कार्य परिणति (Theory and Pracis) वाली साम्यवादी आस्थाओं की सम्भावनाओं को प्रस्तुत करती है । काव्य नायक के शब्दों में वह -

"परम अभिव्यक्ति/ अविरल घूमती हैं जग में
पता नहीं जाने कहाँ, जाने कहाँ/ वह है इसलिए
मैं हर गली में/ और हर सड़क पर/ झाँक-झाँक
देखता हूँ हर एक चेहरा/ प्रत्येक गतिविधि/ प्रत्येक
चरित्र बद्ध एक आत्मा का इतिहास/ हर एक
देश/ व राजनीतिक स्थिति और परिवेश/ प्रत्येक
मानवीय स्वानुभूत आदर्श/ विवेक प्रक्रिया, क्रियागत
परिणति... खोजता हूँ पठार पहाड़ समुन्दर
जहाँ मिल सके/ मेरी वह खोयी हुई परम
अभिव्यक्ति, अनिवार आत्म सम्भवा ... /"

कविता की अन्तिम परिणति में काव्य वाचक 'मैं' का काव्य नायक 'मिरर इमेज' 'वह' में विलयन होता है । जो वैयक्तिक भाव की परिणति 'निर्वैयक्तिक स्वरूप' में है । कहना न होगा कि मुक्तिबोध की काव्य संरचना पर टी. एस. इलियट के निर्वैयक्तिक सिद्धान्त का गहरा प्रभाव रहा है । वे 'कला के तीन क्षण' की सापेक्षिक व्याख्या में वैयक्तिक अनुभवों का पर्यावसान निर्वैयक्तिक भावों को मानते रहे हैं । जो प्रकारान्तर से निज अस्मिता का समष्टि भाव है अतः 'मैं' का 'वह' में तब्दील होना विवेक निष्कर्ष ही है । नन्द किशोर नवल का प्रस्तुत विवेचन हमारे मत की पुष्टि करता है कि 'अंधेरे में' के काव्यनायक को इसी हद तक मुक्तिबोध का प्रतिरूप मानने में कठिनाई होती है, इसी लिए कि कवि की जिस रचना प्रक्रिया को समझने पर उन्होंने अत्यधिक बल दिया था, उनकी कविताओं का विश्लेषण करने के क्रम में उसी की उपेक्षा की जाती है । उनके रचना प्रक्रिया सम्बन्धी लेखों में भरपूर संकेत है कि उनकी अपनी रचना प्रक्रिया में कैसे वैयक्तिकता और निर्वैयक्तिकता एक दूसरे के गुण प्राप्त कर लेती है, जिससे दोनों की शक्ति बढ़ जाती है । निष्कर्ष यह है कि उक्त नायक न तो पूर्णतः विशिष्ट चरित्र है, जैसा डॉ. शर्मा सिद्ध करना चाहते हैं, न पूर्णतः सामान्य चरित्र, जैसा

कि नामवरजी बतलाते हैं । उसके चरित्र में विशिष्ट और सामान्य दोनों घुलमिलकर एक हो गये हैं । उसके चरित्र की यह द्वन्द्वात्मक एकता उसकी प्रभावोत्पादकता का कारण है ।"[11]

प्रसंगवश परमाभिव्यक्ति की खोज कहिए या 'अस्मिता का विलयन'... वह काव्य रचना का चरम लक्ष्य है । काव्य वाचक 'मैं' का विलयन उस 'वह' में होना ही स्वानुभूत आदर्श, विवेक प्रक्रिया और क्रियागत परिणति है । कविता में ये तीनों पड़ाव, रूपक-स्थितियाँ स्पष्ट हैं । 'स्वानुभूत आदर्श' रहस्यात्मक आकृति, रक्तालोक स्नात पुरुष की पहचान है । विवेक प्रक्रिया शोभायात्रा के नग्न स्वरूप को जान लेना, तालस्ताय तिलक-गांधी व मानव शिशु को ज्ञानार्जन की परम्परा में ग्रहण करना है । 'क्रियागत परिणति' अन्य युवकों के व्यक्तित्वांतरण हेतु पठार, पहाड़, समुन्दर के परे हरेक देश इतिहास-परिवेश की परमाभिव्यक्ति रूपी 'विलयन' का, जनक्रान्ति हेतु भावबोध है । 'अस्मिता की खोज' अर्थात् परमाभिव्यक्ति की खोज तो दूसरे पड़ाव 'विवेक प्रक्रिया' में हो चुकी है । जिसकी पुनरपि स्थापना 'कविता के नये प्रतिमान' में पुनश्च भाव में नामवरसिंह समापन आलोकवृत्त के आस-पास करते हैं । पर सवाल 'अस्मिता की खोज' के बाद अपने महान लक्ष्य हेतु 'अस्मिता के विलयन' का है ।

कविता की स्थिति से आगे की कल्पना की जाये तो 'कवितागत' वहाँ वस्तु यथार्थ का हिस्सा होगा और कर्ता के चेहरे स्वयं होंगे । परमाभिव्यक्ति की खोज तब तक जारी रहेगी जब तक कि क्रियागत परिणतियाँ क्रान्ति को रूपायित नहीं कर देतीं ।"[12] सर्वहारा और सामान्यजन का अधिनायकत्व स्थापित नहीं हो जाता । पर यह पूँजीवादी व्यवस्था में सम्भव नहीं है । इस क्रान्ति के उद्‌बोधन एवं आत्मानुभूति की प्रक्रिया, विवेक जागरण एवं क्रियात्मक परिणति के लिए देश इतिहास-परिवेश व हर एक आत्म... सामान्य मानव का जागरुक होना आवश्यक है । अतः डिक्लास होने की प्रक्रिया में रचनाकार एवं बुद्धिजीवी की सकारात्मक भूमिका का अवगाहन संकेत देकर कविता का समाप्त हो जाना, काव्य संरचना का पूर्णतम स्वरूप उपलब्ध होता है ।

किस्सा कोताह यह है कि "आशंका के द्वीप : अंधेरे में' का नायक मनु काव्यवाचक की परमाभिव्यक्ति का प्रतीक है, जो प्रसाद के मनु की तरह हिमालय की गुफाओं में पलायन नहीं करता है बल्कि जीवन और दुर्व्यवस्था के 'अँधेरे में' अस्मिता की खोज और आत्माभिव्यक्ति के विलयन हेतु यथार्थ जगत् की गलियों में, जनयूथ में रक्तालोक स्नात पुरुष की तरह फटेहाल संघर्षनुमा रूप में घूमता है । वह व्यवस्था के नग्न तिलिस्म को मृतक शोभायात्रा जुलूस के दर्शक के रूप में जान लेता है । अपनी विवेक प्रक्रिया में तालस्ताय, गांधी और तिलक से ज्ञानात्मक संवेदन प्राप्त करता है और जन-चेतना के रूपान्तरण हेतु दमन-शोषण, आतंक का सामना करते हुए

तनावग्रस्त स्थिति में अस्मिता के विलयन हेतु (अहं के विलयन वाली अज्ञेयीय मुद्रा में नहीं) वह जन चेतना के सहयात्रियों को हर एक आत्मा, इतिहास-परिवेश व देश में तलाशता है ।

वास्तव में 'मनु' (कौन मनु ? का संबोधन, कविता के प्रारम्भ में) यहाँ रहस्यात्मक आकृति व परमाभिव्यक्ति वाली अस्मिता का संकेत प्रतीक है, जहाँ अहम और वर्गीय सत्ता का विलयन आवश्यक है । वही उसका चरम लक्ष्य है जो वाद के वर्णन में जनयूथ में खो जाता है और काव्यनायक उसी की पुष्टि हेतु आत्मान्वेषण और विवेक प्रक्रिया साधता है । महात्मा गाँधी द्वारा काव्य वाचक को मानव शिशु सौंपना दर असल लेखक बुद्धि जीवी वर्ग को युगचेतना की जिम्मेदारी का भार सौंपना है । दार्शनिक एवं कवियों द्वारा अपनी जिम्मेदारी का भार वहन करना है । जहाँ तिलक और गाँधी के आदर्श एवं कार्य की प्रासंगिक कथाएँ भर हैं ।

मुक्तिबोध की काव्य संरचना में प्रयुक्त कतिपय शब्द विशेषों को आधार बनाकर उनकी विचारधारा एवं काव्य सर्जना पर रहस्यवाद, अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद को चस्पा करने की नाकाम कोशिश रामविलास शर्मा ने की है तो विद्यानिवास मिश्र ने अध्यात्म के घाट पर नर-नारायण की पीड़ा के दर्शन में उनको पहचानना चाहा है । नामवर सिंह ने उनकी परमाभिव्यक्ति की खोज को अस्मिता की खोज माना है । जबकि मुक्तिबोध अपने जीवन मूल्यों एवं नये सौन्दर्यशास्त्र की पहल पर रचनाकार के अस्तित्व का विलयन (वर्गाभिरुचि एवं अहं का विलयन) व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया में चाहते रहे हैं ।

वास्तव में 'आशंका के द्वीप : अंधेरे में' कविता स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्य पश्चात् के दौर की रचनाकार के आत्मसंघर्ष एवं आत्मपरक-मनोविश्लेषण का दहकता हुआ दस्तावेज है । फासिस्ट प्रवृत्तियों को रेखांकित करने वाली गुएर्निका इन वर्स है ... शब्दांकित काल-प्रतिबिम्बित कालजयी गाथा है । यह कालांकित होते हुए भी वर्ग चेतना एवं वैश्विक विजन से अतिक्रमित होने वाली सामाजिक सरोकारों की कालजयी कविता है । मुक्तिबोध कृत 'अंधेरे में' कविता की तुलना आतंकपूर्ण स्थिति में ज्यूलिस फ्यूचिक द्वारा 'फाँसी के तख्ते पर से' जारी किए गए जनक्रान्ति सम्बन्धी सन्देश से की जा सकती है । इस कविता के तनाव की समान्तरता 'वेटिंग फॉर गोने' के नारकीय तनाव से की जा सकती है । विवेच्य कविता क्रान्ति की रोमांटिक धारा का गतिशील आईना है । कालबद्ध ऐतिहासिक संक्रमण का आधार होते हुए कालजयी आस्था की संघर्ष गाथा है ।

मुक्तिबोध के आत्मपक्ष अर्थात् स्वानुभूत आदर्शपक्ष और बाह्यपक्ष की विवेक प्रक्रिया में हमेशा एक तनाव रहा है । जिसमें वे मानते हैं कि आत्मपक्ष और परिस्थिति पक्ष एक ही वास्तविकता के दो अंग हैं और इन दोनों में गहरे अंतः सम्बन्ध हैं । इस

प्रकार आत्मसंघर्ष का गहरा सम्बन्ध बाह्य परिस्थितियों व विवेक परम्परा में अपनी अस्मिता पहचानने का नहीं है बल्कि अपनी रचना दृष्टि और सोद्देश्यपूर्ण पक्षधरता से भी है । बकौल नामवर सिंह के भी इस आत्म-संघर्ष को निर्णय की ओर उन्मुख किया जा सकता है । इसीलिए मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं का अंत किसी हड़ताल या जन आन्दोलन अथवा जन-क्रान्ति के आरम्भ से होता है और काव्यनायक कभी तो उस आन्दोलन का क्रान्ति का दृष्टा मात्र होता है और कभी उसका प्रेरक ।''[13]

निराला, नागार्जुन और मुक्तिबोध लोकजीवन और लोकचित्र के कवि हैं, उनका रचना संसार एक नये सौन्दर्यशास्त्र की प्रत्याशा रचना है । निराला और नागार्जुन की तरह मुक्तिबोध अपनी विरल परम्परा के एक ऐसे विलक्षण कवि हैं । जो लोकजीवन लोक चिन्तन और लोक संघर्ष को समर्पित कवि हैं । रमेश कुन्तल मेघ के शब्दों में आज रिम्बो की तरह खत्म हो गए हैं । किन्तु थोड़ा जरा सा सम्भल जाने पर यह पत्रकार कवि पाब्लो नेरूदा अथवा पोस्टर कवि मायकोवस्की की तरह खड़ा होता । जिस तरह प्रेमचन्द थोड़ा और जिन्दा रह जाने पर भारत के गोर्की हो गए होते, उसी तरह शायद मुक्तिबोध जीने की और कोशिश में हमारे मायकोवस्की, नेरुदा और ऐवतुशेंको हो गए होते ।'' मुक्तिबोध हिन्दी के कालीदासीय जमीन वाले राजनैतिक कवि हैं । वे किसी भी सांस्कृतिक कवि और शुद्ध सौन्दर्यवादी कवि से उन्नीस नहीं होंगे ।''[14]

मुक्तिबोध की काव्य सर्जना को हम आलोचना के केन्द्र में रखने की पेशकश करेंगे । वैसे भी नामवर सिंह की टिप्पणी रही है 'अंधेरे में' कविता सम्बन्धी मूल्यांकन प्रक्रिया में कि ''कुल मिलाकर इसे नयी कविता की चरम उपलब्धि कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, उन्होंने मुक्तिबोध के काव्य को 'निषेध के निषेध' की संज्ञा देकर उनकी विशिष्ट मूल्यवत्ता को स्वीकारा है और माना है कि 'मुक्तिबोध कल होने वाली घटनाओं की कविताएँ ही नहीं लिख रहे थे बल्कि भावी काव्य सिद्धान्त के सूत्र फेंक रहे थे ।''[15] पर यह भी एक तरह से विवेकपरक सूचना है ... कारण भावी काव्य सिद्धान्त के सूत्र फेंकने और रचने की प्रक्रिया में हम ''नागार्जुन, मुक्तिबोध और शमशेर की नवत्रयी को ही समवेत रूप में स्वीकार पायेंगे । अज्ञेय, दिनकर और नरेश मेहता की ज्ञानपोठी सत्ताश्रयी-मिथक त्रयी को नहीं । हमें वर्तमान जीवन संघर्ष में सहयात्री और प्रेरक बने रहने वाले रचनाकार चाहिए प्रेम प्रकृति और कोरम कोर काल्पनिक शब्दकार नहीं ।

मुक्तिबोध की काव्य सर्जना में मसीहा होने का मुगालता नहीं है और न ही अद्वितीय क्षणों के भाव-विस्फोट के रचयिता होने का अज्ञेय जैसा बानक है । वे काव्य चेतना व काव्य सर्जना की वैश्विक मनोभूमि सम्बन्धी सार्थक पहचान अभिज्ञापित करते हैं -

"नहीं होती कहीं भी खत्म नहीं होती
कि वह आवेग त्वरित कालयात्री है
व मैं उसका नहीं कर्ता। पिता धाता कि
वह कभी दुहिता नहीं होती। परम स्वाधीन
है। वह विश्वयात्री है ।"

समकालीन काव्य संसार में मुक्तिबोध लम्बी कविताओं की संरचना वाले विलक्षण कवि हैं, जो फैंटेसी शिल्प में, स्वप्न तंत्र की शैली में 'विभ्रम और यथार्थ' का आभास देते हैं । उनकी रचनाओं में एक आत्मचेतस-संवेदनशील मन की छटपहाटहट है । एक बुद्धिजीवी या सुविधाभोगी मन और विवेक सम्मत अंतश्चेतना का द्वंद्व है । वे अपने आपको 'औरांग-उटांग' और 'ब्रह्म राक्षस' की स्थिति में स्वार्थी दम्भी मनुष्य या 'ज्ञान के स्मारक' बुद्धिजीवी के रूप में रखना नहीं चाहते हैं । वे आत्मचेतस और संवेदनशील आत्मा के चक्के पर संकल्प शक्ति का टायर चढ़ाना चाहते हैं । इस पतनशील पूँजीवादी व्यवस्था में, वे व्यक्तित्वांतरण डिक्लास होने की प्रक्रिया में अपनी अस्मिता की सार्थकता मानते हैं ।

सारांशतः उनकी कविता न तो रामविलास शर्मा के अनुसार मनोविश्लेषणवाद, रहस्यवाद, अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद का सामंजस्य है और न ही नन्दकिशोर नवल की तरह विशिष्ट और सामान्य काव्य चरित्र का एकीकरण है । नामवर सिंह ने उनकी कृति 'अँधेरे में' को अस्मिता की खोज कहा है । जबकि वह काव्य वाचक 'मैं' के रूप में काव्यवाचक 'वह' के प्रतिरूप पूर्णाभिव्यक्ति रूप की प्राप्ति में अपनी अस्मिता का विलयन' है । इस कविता की फैण्टेसी शैली में 'अवचेतन की प्रवाहमय धारा 'स्ट्रीम ऑफ अन्कान्शियस रूपी काव्य पैटर्न का प्रयोग किया गया है ।

वस्तुतः यह कविता रचनाकार के जीवनानुभव, स्वानुभूत आदर्श और विवेक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति का दहकता हुआ इस्पाती दस्तावेज है जिसमें कवि मन और जन हित के संघर्ष का एकीकरण है । जनसंघर्ष में रचनाकार द्वारा अपनी 'अस्मिता के विलयन' का मेनिफेस्टो है । यह कविता रचनाकार की प्रतिबद्धता और सामाजिक सरोकारों का जीवन्त प्रमाण है, कालसम्पृक्त होते हुए कालजयी आस्था का उद्घोष है । शिल्प विधान हेतु फैण्टेसी का उपयोग अगली कविता की संरचना में आवश्यक उपादान बन पड़ा है । अन्यथा 'एपिक फार्म' महाकाव्यात्मक स्वरूप की अन्तर्जटिलता समेटी नहीं जा सकती है । भारतवर्ष में न कोई एक पूँजीवाद, साम्यवाद या सामंतवाद जैसी प्रशासन व्यवस्था है । अतः विचार धारात्मक स्तर पर रचनाकार के सरोकारों को रक्तालोक स्नात पुरुष और पूर्णाभिव्यक्ति की प्रतीकात्मकता में ही अभिव्यक्त किया जा सकता है ।

काव्यनायक का व्यक्तित्व यहाँ डिक्लास होकर अन्य व्यक्तियों की आत्मा, चरित्र, इतिहास-देश, परिवेश में सहयात्री को तलाशता है । यहाँ केवल 'अहं' का विलयन

नहीं है बल्कि उससे आगे की स्थिति में 'अस्मिता की खोज' और सामाजिक सरोकारों की पक्षधरता के कारण 'अस्मिता का विलयन' है । वर्गविहीन समाज की संरचना के लिए कृत संकल्प मन का घोषणापत्र है । जो अपने फैण्टेसी शिल्प की प्रवृत्ति के अनुकूल बिम्ब व प्रतीक सघनता में अपनी ऐतिहासिक चेतना का गतिशील आईना है, जो कालबद्ध भी है और कालजयी भी । साथ ही साथ जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि के स्थान पर नये सौन्दर्यशास्त्र का मानक दस्तावेज भी है तथा सामाजिक सरोकार और प्रतिबद्ध काव्य सृजन की मूल्यवान धरोहर भी है ।

सन्दर्भ सूची

1. नरेन्द्र मोहन : लम्बी कविताओं का रचना विधान, पृ. 2
2. शमशेर बहादुर सिंह : चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूमिका पृ. 26
3. प्रभाकर माचवे : गजानन माधव मुक्तिबोध (सं.) पृ. 239
4. केदारनाथ सिंह : पूर्वग्रह अंक 39-40, पृ. 29
5. नन्दकिशोर नवल : निराला और मुक्तिबोध, पृ. 121
6. हरिशंकर परसाई : 'आलोचना' जुलाई-सितम्बर, 64
7. विद्यानिवास मिश्र : 'राष्ट्रवाणी' जनवरी-फरवरी 65, पृ. 326
8. नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृ. 267
9. अशोक चक्रधर : मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया, पृ. 108
10. नन्द किशोर नवल : निराला और मुक्तिबोध, पृ. 152
11. नन्दकिशोर नवल : निराला और मुक्तिबोध, पृ. 152
12. अशोक चक्रधर : मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया, पृ. 115
13. नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृ. 25
14. रमेश कुन्तल मेघ : गजानन माधव मुक्तिबोध (सं), पृ. 231
15. नामवरसिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृ. 265

□□□□□